भारतीय संगीत वाद्यों का प्राचीन काल से आधुनिक समय तक ऐतिहासिक सर्वेक्षण

डॉ० सुमन लता शर्मा
एसोसिऐट प्रोफेसर, संगीत विभाग
आर०जी० (पी०जी०) कॉलेज, मेरठ
ईमेलः drsumanlatasharma3@gmail.com

सारांश

भारतीय संगीत का इतिहास समृद्धिशील है। वह आज भी विभिन्न आयु एवं वर्ग के जिज्ञासुओं की रूचि एवं प्रेरणा का स्रोत बना हुआ है। भारतीय संगीत हमारी संस्कृति का गौरव है, जो वैज्ञानिक शास्त्र पर आधारित है।

संगीत के इतिहास का अवलोकन करने या समझने के प्रयास के पीछे मुख्य उद्देश्य है 'उस कला को और अधिक समझने का प्रयास'। भारतीय संगीत के इतिहास एवं विभिन्न कालों में लिखे गये ग्रंथों के अध्ययन द्वारा संगीत सम्बन्धी जानकारी मिलती है। इसके अतिरिक्त समय–समय पर संगीताचार्यों एवं विभिन्न विचारकों द्वारा जो विचार प्रकट किये गये हैं उनका अध्ययन एक नई अंतदृष्टि प्रदान करता है। संगीत का इतिहास केवल विभिन्न रचनाकारों की उपलब्धि ही नहीं है बल्कि विभिन्न वाद्यों का विकास व विभिन्न गायन शैलियों का विकास भी उसी के अन्तर्गत आता है।

शोध पत्र का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार हैः

डॉ० सुमन लता शर्मा

भारतीय संगीत वाद्यों का प्राचीन काल से आधुनिक समय तक ऐतिहासिक सर्वेक्षण

शोध मंथन, जून 2018,
पेज सं0 192.197

Article No. 30
http://
anubooks.com?page_id=581

सभ्यता के सभी चरणों में संगीत की स्वरलहरी किसी न किसी रूप में अवश्य विद्यमान रही है, जिससे इसकी प्राचीनता स्पष्ट हो जाती है। संगीत कला के सूर्य का उदय इस वसुन्धरा पर सृष्टि के प्रारम्भ से ही हो चुका था। अंत संगीत का इतिहास उतना ही प्राचीन या पुराना है जितना मानव भावनाओं का है। मानव के प्रयासों द्वारा संगीत कला विभिन्न युगों में उत्तरोत्तर विकसित होती गई।

संगीत का विकास क्रम

- प्रागैतिहासिक काल
- सिंधुघाटी की सभ्यता काल
- वैदिक काल
- प्राचीन काल
- मध्य काल
- आधुनिक काल

प्रागैतिहासिक काल

इस काल में मानव नितान्त प्राकृतिक अवस्था में था। इस अवस्था में भी उसे संगीत से प्रेम था परन्तु संगीत का कोई कलात्मक स्तर नहीं था। इस काल की कोई सूत्रबध सामग्री उपलब्धा नहीं होती है। मानव मुख से निःसृत विचित्र ध्वनियाँ ही उनका संगीत था संगीत वाद्य का जन्म 'पूर्व पाषाण काल' में हो चुका था। पत्थरों को काटकर दो टुकड़ों से मंजीरे जैसे वाद्य को बनाया जिसको 'अस्सा' नाम से जानते थे। धातु युग में संगीत कला का एक सुन्दर रूप देखने को मिलता है। इस युग के व्यक्तियों ने संगीत कला को धार्मिक कला के रूप में अपनाया था। ये लोग उत्सवों व त्यौहारों को गा बजाकर मनाते थे। प्रागैतिहासिक काल के विभिन्न युगों में इस प्रकार संगीत का क्रमिक विकास हुआ।

अविकसित अवस्था के रूप में आदिम मानव के वाद्यों को तीन श्रेणियों में बॉटा जा सकता है–चमड़े से मढ़े, सुशिर एवं तत्। प्रोफेसर बालशेक की मान्यता रही है– कि पहले ताल वाद्य फिर तत् वाद्य के रूप में तीरकमान और फिर सुशिरवाद्य का आविष्कार सबसे अन्त में हुआ। भूमि दुंदुभि के रूप में अवनद्ध वाद्य का प्रयोग सभी देशों की जातियों में पाया जाता है जमीन में एक गढ़ढ़ा खोदकर उस पर चमड़े की बद्धी से कस दिया जाता था।

सिंधु घाटी की सभ्यता का काल

जब हम संगीत वाद्यों का ऐतिहासिक अवलोकन या मूल्यांकन करते हैं तो ज्ञात होता है कि संगीत का जितना गहरा और विशुद्ध ज्ञान इस सभ्यता में मिलता है इससे पूर्व में नहीं। मोहनजोदडों तथा हडप्पा की खुदाई में प्राप्त पुरातत्वावशेषों से यह विदित होता है कि तत्कालीन जीवन में संगीत का पर्याप्त प्रचलन था। धार्मिक तथा लौकिक समारोहों में गीत वाद्य एवं नृत्य द्वारा मनोरंजन होता था। मानव बहुत सुसंस्कृत तथा सभ्य था और बांसुरी वीणा तथा विभिन्न प्रकार के ड्रम बजाने की कला से परिचित था।

नृत्य एवं गीत के साथ–साथ वाद्यों का भी प्रर्याप्त प्रचार था। मोहनजोदडों एवं हडप्पा की खुदाई में उपलब्ध दो मुद्राओं में दीर्घाकार ढ़ोलक अंकित है, जिसके दोनों मुख चर्म से मढ़े हुए हैं। इस प्रकार उस समय संगीत का रूप विकसित एवं स्तर उत्कृष्ट था।

मोहनजोदडों काल में गोल बर्तनों के आकार में पकी हुई मिट्टी के कंकड को डालकर बजाने का प्रयोग किया जाता था। इस सभ्यता में विभिन्न करताल भी पाये गये। करताल बर्तन वाली मिट्टी से बनाये जाते थे आकार बनाकर मिट्टी लगा दी जाती थी तथा अन्दर छोटी–छोटी कंकड रखदी जाती थी। ये करताल हाथ के बने हुए तथा बनावट में साफ एवं सुथरे हुआ करते थे तथा इसमें कोई छिद्र नहीं होता था जिससे किसी प्रकार की वायु निकल सके। करताल की सतह पतली होती थी, जिससे ध्वनि में कोई बाधा न आये।

एक स्त्री वाणी बजाते हुए जिसमें चार तार दिखाए गए है मिलती है। लोथल की खुदाई में एक शंख मिला है जिसमें जगह–जगह पर मोड हैं। उपर्युक्त सभी वाद्य–सिंधु सभ्यता की कलात्मक परम्परा को दर्शाते हैं।

वैदिक काल

वैदिक युग भारत के सांस्कषतिक इतिहास में प्राचीनतम युग माना जाता है। वैदिक युग से अभिप्रायः उस सुदीर्घ कालखण्ड से है, जिसमें चारों वेदों तथा उसके विविध अंगों का विस्तार हुआ है।

इस युग में गायन के साथ वाद्यों का भी प्रयोग होता रहा है। उद्गाता के गायन के समय उनकी पत्नियाँ विभिन्न प्रकार की वीणाओं का वादन किया करती थी। सम्भवतः ताल वाद्य व वीणाओं का प्रयोग ऋचाओं को सुंदर बनाने के लिए किया जाता था। ऋग्वेद में दुंदुभि वाण, नाडी, वेणु, कर्करि, गर्गर, गोधा, पिंग तथा आघाटि का उल्लेख मिलता है। दुंदुभि एवं भूमि दुंदुभि उस समय के प्रमुख अवनद्ध वाद्य थे दुंदुभि अपनी ध्वनिमात्र से ही विपक्षी को पराजित करती थी तथा वीरों को उत्साहित करती थी, ऐसी मान्यता ऋग्वेद में पायी जाती है। ये दोनों ढोल वर्ग के चर्म में मढ़े वाद्य थे। दुंदुभि का निर्माण काष्ठ कुहर पर चर्माच्छादन करने से होता था भमि दुंदुभि के लिए काष्ठ का प्रयोग नहीं होता था बल्कि भूमि पर गर्त (गढढा) खोदकर उसी को चर्म से आच्छादित किया जाता है।

यजुर्वेद में भी वीणा, वाण, तूणव दुंदुभि, भूमि–दुंदुभि शंख आदि का वर्णन मिलता है अश्वमेध आदि यज्ञों में मनोरंजन के लिए गाथा गान तथा वीणादि वाद्यों का वादन किया जाता था।

सामवेद पूर्ण संगीतमय है। साम शब्द का मूलार्थ गान अर्थात् गेय वस्तु रहा है। सामगान में वीणा, भूमि–दुंदुभि आदि वाद्यों का प्रयोग किया जाता था। सामवेद में संगीत का उदात्त एवं विकसित रूप देखने को मिलता है।

अथर्ववेद में गीत, वाद्य तथा नृत्य तीनों का ही प्रचार था। आधाटि, कर्करि और दुंदुभि के उल्लेख अनेकों स्थानों पर प्राप्त होते हैं। चारों वेदों में संगीत की स्थिति का अवलोकन करने पर ज्ञात होता है कि संगीत के लौकिक एवं शास्त्रीय दोनों रूप प्रचलित थे। विविध प्रकार के वाद्यों, सप्त स्वरों तथा नृत्यों का विकास उस युग में हो चुका था।

प्राचीन काल

इस युग में लिखे गये पुराणों, रामायण एवं महाभारत जैसे महाकाव्यों में वर्णित संगीत वाद्यों के वर्णन जनमानस की संगीत सम्बन्धी रूचि को दर्शाते हैं। पुराणों में विभिन्न वाद्यों का उल्लेख भी मिलता है। तंत्री वर्ग के वाद्यों के अन्तर्गत वीणा, सुशिर वर्ग में वेणु, शंख, अवनद्ध वाद्यों में मृदंग, दर्दुर पणव पटह दुंर्दुभि तथा धन वर्ग में घंटा आदि वाद्यों का विशेष प्रचलन था।

रामायण एक ऐसा महाकाव्य है जिसमें संगीत की अपार सम्पदा निहित है। रामायण में दशरथ पुत्रों के जन्मोत्सव, विवाह तथा वनवास के पश्चात् राम के पुनः अयोध्या आगमन जैसे अवसरों पर विभिन्न प्रकार के वाद्यों के साथ गीतों की मनोरम ध्वनियां तथा नृत्य के घुघरूओं की झंकार सुनाई पड़ती है। इसी काल में रावण द्वारा गज वाले वाद्य रावनास्त्र का आविष्कार हुआ। आधुनिक वायलिन इसी का रूप है। नृत्य का प्रयोग वैदिक काल से ही यज्ञादि अवसरों पर होता था, परन्तु घुघरू का प्रयोग सबसे पहले रामायण में ही मिलता है।

महाभारत काल का संगीत उत्तमता की पराकाष्ठा तक पहुंच चुका था श्री कृष्ण की मुरली में अनोखा जादू था। वे गायन वादन तथा नृत्य तीनों में निपुण थे। अर्जुन उस युग के अद्वितीय वीणावादक थे। रामायण, महाभारत काल में भेरी मृदंग, मुरज, पणव, आदि वाद्यों का विशेष प्रचलन था। शंख महाभारत काल का प्रिय वाद्य था।

पाणिनी काल

पाणिनी की अष्ठाध्यायी में संगीत का पर्याप्त प्रचलन था। पाणिनी में अष्टाध्यायी में वीणा, मृदंग, माण्डुक, झर्झर, तूर्यांग का उल्लेख किया है। वृन्दवादन के लिए तूर्य शब्द का प्रयोग पाया जाता है। अवनद्ध वाद्यों में झर्झर, ददुर, मण्डुक, पणव आदि वाद्यों का प्रचलन था।

बौद्ध तथा जैन ग्रंथों में वर्णित वाद्य

बौद्ध साहित्य में तत्, वितत, धन तथा सुशिर इन चतर्विध वाद्यों का प्रचुर उल्लेख पाया जाता है। तत् वाद्यों में वीणा परिवादिनी, विपंची, वल्लकी, महती, नकुली, कच्छयी तथा तुम्ब, वीणा आदि। वीणा, तत वाद्यों के लिए सामान्य संज्ञा थी। अवरूद्ध वाद्यों में मृदंग, पणव भेरी, दिन्दिम तथा दुंदुभि, धन, वाद्यों में घण्टा झल्लरी, जल्लली तथा कास्य ताल तथा सुशिर वाद्यों में शंख, तूर्य, कुशल श्रृंग आदि का उल्लेख मिलता है।

जैनियों के साहित्य ठाणांग सुत्र तथा कल्पसूत्र में संगीत विषयक प्रचुर सामग्री मिलती है। ठाणांग में सप्तस्वरों का उद्गम वाद्यों द्वारा बताया गया है। मृदंग से शड्ज गोमुखी से ऋषभ, शंख से गन्धार, झल्लरी से मध्यम, गोधिका से पंचम, आडम्बर से धैवत तथा महाभेरी से निशाद की उत्पत्ति बताई है। भारतीय संगीत शास्त्र में पशुपक्षियों से स्वरों की उत्पत्ति का उल्लेख मिलता है। परन्तु वाद्यों द्वारा स्वरों की उत्पत्ति हुई ऐसा वर्णन केवल यहीं मिलता है।

मध्यकाल

संगीत की प्रगति एवं विकास का क्रम मध्ययुग में भी चलता रहा। इस समय मुगल सभ्यता से प्रभावित भारत का संगीत अपनी प्राचीनता को छोडकर नवीन रूप में विकसित होने लगा तथा

दो शाखाओं उत्तर व दक्षिण में विभक्त हो गया। दक्षिण भारतीय संगीत अपनी प्राचीनता को संजोये हुए निरन्तर आगे बढ़ता गया तथा उत्तर भारतीय संगीत मुस्लिम सम्पर्क से नए–नए रूपों में विकसित हुआ। वैदिक युग में ईश्वर आराधना का साधन संगीत इस समय विलासिता के आवरण से प्रच्छन्न हो गया।

संगीत में श्रृंगारिकता का समावेश होने से सरल संगीत का प्रचार बहुलता से होने लगा अकबर ने समय में भारतीय संगीत अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँचा और यह काल संगीत का स्वर्णयुग कहलाया। इस समय में सितार, तबला आदि वाद्यों का प्रयोग होने लगा।

मध्यकालीन संगीत के इतिहास पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि इस युग में संगीतकला की अत्यधिक उन्नति एवं प्रगति हुई और साथ ही संगीत के क्षेत्र में नवीन परिवर्तन भी हुए। मुसलमान तथा हिन्दु संगीतज्ञों द्वारा कई नए राग, ताल तथा ख्याल, तराना, गजल, टप्पा कव्वाली आदि गीत प्रकार प्रचार में आये। इसके साथ ही दो महत्वपूर्ण नवीन वाद्यों–तबला एवं सितार का प्रारंभ, प्रचार एवं प्रसार भी हुआ।

आधुनिक काल

18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारत पर अंग्रेजों का आधिपत्य हुआ। अंग्रेजी सभ्यता के परिणामस्वरूप संगीत का विकसित रूप कुंठित होता चला गया। संगीतज्ञों को अपने प्रति अंग्रेजों के उपेक्षित एवं उदासीन व्यवहार के कारण विवश होकर अपनी आजीविकोपार्जन हेतु संगीत कला को व्यवसायिक रूप प्रदान करना पड़ा।

भारतीय संगीत में समय–समय पर आवश्यकता एवं जनरूचि के अनुसार विभिन्न प्रकार के वाद्य निर्मित व विकसित होते रहे हैं। कुछ वाद्य प्राचीन काल से लेकर आज तक प्रचलित हैं। जैसे–मृदंग, ढक्का आदि कुछ वाद्य अप्रचलित हो गये हैं जैसे–दुंदभि, भूमि दुंदुभि पणव, भेरी, झल्लरी, दुर्दर आदि। यह बात अलग है कि इनके आधार पर निर्मित वाद्यों का प्रचलन है किन्तु रूप परिवर्तन के साथ उदाहरणार्थ दुंदुभि के आधार पर नगाडा, पटह के आधार पर ढोलक, पणव के आधार पर हुडुक, दुर्दुर के आधार पर घट आदि।

आधुनिक काल में भारतीय संगीत में तबला, परवावज, मृदंगम् ढोलक, ढोल, खोल, नाल, खंजरी, डफ, हुडुक, नगाडा, डमरू आदि ताल वाद्यों का प्रचलन है। तत्री वाधों में वीणा, सितार, सरोद, सारंगी, सुरबहार इसराज वायलिन, गिटार, सन्तूर आदि। सुशिर वाद्यों में वंशी, शहनाई, हारमोनियम, आदि तथा धन वाद्यों में घण्टा, घडियाल, झांझ, मजीरा, चिमटा, घुघरू, घण्टी व झुनझुना।

इस प्रकार संगीत वाद्यों के एतिहासिक सर्वेक्षण से पता चलता है कि वाद्य सांगीतिक सौन्दर्य में वृद्धि करने में पूर्ण सक्षम है। चूँकि वाद्यों के विकास व निर्माण में कलाकार और उसके निर्माता दोनों की चेतना व कल्पना की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। अतः कलाकार अपनी संगीत साधना के समय वाद्य में जिस कमी का अनुभव करता है उसी के अनुरूप वाद्य के रूप या आकार–प्रकार, सामग्री में भी परिवर्तन होता है।

संदर्भ

1. भारतीय संगीत– डा० पूनम दत्ता
2. संगीतायन– सीता जोहरी
3. भारतीय संगीत शास्त्र– तुलसीराम देवांगन
4. भारतीय संगीत सरिता– डा० रमा सराफ
5. भारतीय संगीत शास्त्र में वाद्यों का चिंतन– डा० अंजना भार्गव
6. संगीत में ताल वाद्यों की उपयोगिता– डा० चित्रा गुप्ता
7. संगीत की ऐतिहासिक, यात्रा–ग्यारहवीं से बीसवीं शताब्दी– डा० कु० शरयू कालेकर